Golden Research Thoughts
Volume 2, Issue. 3, Sept 2012
ISSN:-2231-5063

Available online at www.aygrt.net

ORIGINAL ARTICLE

भीड़ का आक्रो–संरचनात्मक तनाव

अनुपम गुप्ता

प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान)
एम.एल.बी. शास. उत्कृष्ट महाविद्यालय, ग्वालियर

प्रस्तावना :–

भीड़ का असहिश्णु, अमर्यादित, असामाजिक एवं आक्रोशपूर्ण व्यवहार घटना विशेश होते हुए भी पिछले कुछ समय से सामान्य घटना के रूप में उभर कर आ रहा है। नागपुर में राज ठाकरे के कार्यकर्ताओं द्वारा कतिपय बिहारियों के साथ की गयी झूमा–झटकी या दुर्व्यवहार हो अथवा एक व्यक्ति को पीट–पीटकर मार डालने की बात हो या फिर बिहार प्रांत में अनेक सिरफिरे युवाओं द्वारा प्रतिक्रिया में बसों को जलाने और राश्ट्रीय सम्पत्ति को नुकसान पहुँचाने की घटना हो। ये सब घटनाएँ असंतुलित, अशोभनीय, असामान्य, अनियन्त्रित एवं नकारात्मक व्यवहार को प्रदर्शित करती हैं। शासन इस प्रकार के व्यवहार व घटनाक्रम को सामान्य मानकर चलता है, जबकि इस प्रकार की घटनाएँ क्षेत्रीय व निजी स्वार्थों से प्रेरित होने के कारण बेहद गम्भीर और दुर्भाग्यपूर्ण होती हैं। शासन की इसी नीति का परिणाम है कि जम्मू कश्मीर एवं औरैया जेसी घटनाएँ अब हमारा ध्यान आकृश्ट नहीं करती हैं। इस प्रकार की घटनाओं को अब हम स्वाभाविक प्रतिक्रिया मानने के आदी होते जा रहे हैं।

शासन का विरोध–प्रदर्शन, तोड़फोड़, विद्रोहात्मक स्वरूप में, सामान्यतया व्यवस्थाओं के प्रति असहमति या अविश्वास की पराकाश्ठाओं के फलस्वरूप प्रकट होता है। बहुधा यह विरोध क्रान्ति के रूप में पाया जाता है, जहाँ शासन सत्ता से आतंकित या पीड़ित आमजन सड़कों पर उतर कर विरोध का साहस करता है और समूचे तंत्र को उखाड़ फेंकना चाहता है। यह प्रयास तब तक जारी रहता है, जब तक वांछित परिवर्तन न हो जाये, या सत्ता उस विद्रोह को दबाने में सफल हो जाये। कई बार यह विरोध आन्दोलन के रूप में भी प्रदर्शित होता है।

भारत भूमि पिछली दो सदियों से आन्दोलनों की ऐतिहासिक पृश्ठभूमि से जुड़ी है। यह 1857 से निरन्तर परिवर्तन के प्रयास में विद्रोह, क्रान्ति, आन्दोलनों से जुड़ी रही है। स्वतन्त्र भारत भी निरन्तर आन्दोलनों की आधार भूमि बना रहा है। धर्म, जाति, क्षेत्र, जनजाति, सम्प्रदाय, लिंग आदि अनेक आधारों पर आन्दोलनों का उदय होता रहा है। इसके अतिरिक्त कुछ आन्दोलन निहित राजनैतिक स्वार्थ के कारण तथा कुछ वास्तविक समस्याओं से जुड़े जनाधार के कारण अस्तित्व में आये। किन्तु वर्तमान प्रवृत्ति एक नये प्रकार में भीड़वाद को जन्म दे रही है, जिसमें राजनैतिक स्वार्थों के बीच व्यवस्थाओं के प्रति हताशा और विद्रोह जन्म ले रहा है।

भारतीय समाज के वर्तमान परिदृश्य में ऐसी अनेक घटनायें हो रही हैं, जो सामान्यतया असंगठित हैं, बहुत बिरले ही संगठित घटनायें सामने आती हैं। ऐसे में यह तय करना कि क्या ये आन्दोलन की श्रेणी में आती हैं, सैद्धान्तिक रूप से सम्भव नहीं है। किसी भी सामूहिक कार्यवाही को आन्दोलन के रूप में तभी पारिभाशित किया जा सकता है, जब वह दीर्घकालिक हो और वह केवल छुटपुट स्वतः उत्पन्न तथा अलग–थलग घटना न हो। साथ ही ऐसी घटना किसी न किसी रूप से संगठित होनी चाहिये, किसी जन समुदाय का केवल क्रियाशील होना ही आन्दोलन नहीं माना जा सकता। यह भी आवश्यक है कि ऐसी क्रियाशीलता से देर सवेर ऐसे उन लोगों की व्यापक रुचि जागृत हो जिनके हितों का वह प्रतिनिधित्व करती है अथवा जिनके हित उसमें प्रतिबिम्बित होते हैं।

एम.एस. राव के अनुसार यह भी जरूरी है कि ऐसे आन्दोलन यथास्थिति के समर्थक न होकर परिवर्तन लाने की ओर उन्मुख हों। उनके विचार में ऐसे कार्य या प्रयत्न आन्दोलन नहीं कहला सकते, जिनका उद्देश्य वर्तमान स्थिति को कायम रखना या उनका पक्ष पोशण करना है।

भारत में होने वाले विरोध आन्दोलन और सामाजिक आन्दोलन आपस में अन्तर रखते हैं। विरोध आन्दोलनों की उत्पत्ति निशेधात्मक तत्वों से होती है और सामाजिक आन्दोलन का उद्देश्य वर्तमान के प्रति गहन असंतोश की भावना व्यक्त करने के साथ–साथ समाज का

Please cite this Article as :*अनुपम गुप्ता* **,** *भीड़ का आक्रो–संरचनात्मक तनाव* **: Golden Research Thoughts (Sept ; 2012)**

पुनर्निर्माण भी होता है।[1]

हमारे विरोध और परिवर्तन के आन्दोलन की सामाजिक भूमि गाँधीवादी मार्ग से प्रशस्त हुयी है। बीच के काल में परिवर्तन के अन्य मार्ग विस्तृत सामाजिक स्वीकृति नहीं पा सके हैं। वैधानिक न होने के कारण में नैतिक स्वीकृति भी नहीं प्राप्त कर सके हैं। गाँधीवादी मार्ग हमारी शैली–प्रवाह व विचार आदि में सम्मिलित हो चुका है। गाँधीवादी दर्शन का सत्याग्रह सत्य, अहिंसा, रूश्ट सहन करने व आत्मानुशासन की ऐसी तकनीकी है जिसमें असहयोग, सविनय अवज्ञा, हिजरत, उपवास, हड़ताल और बहिश्कार के तरीके शामिल होते हैं। गांधीदर्शन के सत्याग्रह की वैचारिकी में असहयोग आन्दोलन के लिये हड़ताल, सामाजिक बहिश्कार और धरना आदि शामिल हैं। हड़ताल श्रमिकों का वह साधन है, जो उनके वैध कश्टों को दूर करने के लिये है।

गाँधीवादी चिन्तन में बंद–जबरन बंद, सत्ता पक्ष द्वारा बंद–विरोधी दल द्वारा बंद, अपनी ही चुनी हुयी सरकार के विरुद्ध तोड़फोड़, अपनी ही सम्पत्ति को नश्ट करना, अपने ही शासन–प्रशासन के विरुद्ध संघर्श की कल्पना नहीं की जा सकती। पूरे स्वतंत्रता आन्दोलन के गाँधीवादी युग में, अत्याचार। अंग्रेज सरकार के विरुद्ध संघर्श के इस तरह के हिंसात्मक उदाहरण कहीं नहीं दिखाई देते हैं, जिस तरह के संघर्श राजनैतिक आधार बना कर आज के समय में देखने को मिलते हैं। आज भारत में बन्द, मोर्चा, हड़ताल यहाँ तक कि दंगा को राजनीति स्वीकृति प्राप्त है। गाँधीवादी चिन्तन ने जिस सत्याग्रह को विश्व स्तर पर स्थापित कर अहिंसात्मक आन्दोलन की नींव रखी–वह आज गांधीगीरी के रूप में प्रकट हो रहा है।

जन सामान्य के सामूहिक व्यवहार की अभिव्यक्ति भीड़, श्रोता, समूह एवं जनता के रूप में देखी जाती है। भीड़, श्रोता, समूह एवं जनता अस्थायी समूह है तथा उसमें मानव के हितों एवं मनोवृत्तियों की अभिव्यक्ति होती है। यही नहीं वे सामुदायिक संगठन, संस्थागत प्रबंध, लोकाचार एवं सामाजिक विघटन आदि के विशिश्ट लक्षणों को प्रतिबिम्बित करती है। समाजशास्त्रियों ने भीड़ को सिद्धान्त रूप में अनेक प्रकार से विभाजित किया है। मन्दिर की भीड़ से लेकर शराबियों की भीड़, बुलबुले की तरह किसी छोटी घटना पर एकत्रित भीड़ से लेकर आन्दोलन के उद्देश्य से जुटी भीड़ तक। यह सभी वर्गीकरण भीड़ की मानसिकता, उद्देश्य, व्यवहार, संयम और विचार की व्याख्या करते हैं।

समाजशास्त्री किंग्सले डेविस के वर्गीकरण के अनुसार यदि देखा जाये तो भारतीय भीड़ में क्रियाशील भीड़ सबसे ज्यादा मुखर होती दिख रही है। इस तरह की भीड़ में व्यक्ति की मानसिक स्थिति असामान्य होती है। उसमें उत्तरदायित्व हीनता, अनुकरण, विवेकहीनता, असंयम, निरंकुशता, लापरवाही, निम्नबुद्धि आदि की प्रधानता होती है।

डेविस ने लिखा है भीड़ अत्यधिक संकेतग्राही होती है। इसके सदस्य एक दूसरे के हावभाव तथा आवाजों के अनुसार एक स्वतःचलित पशुतापूर्ण अभिक्रिया करते हैं। जिसमें इतनी तीव्रता होती है कि विचार की हुई व्यवस्था अथवा तार्किक दूरदर्शिताओं को कोई स्थान नहीं मिल पाता। वास्तव में अधिकतम अभिक्रियाएँ अनुकरणात्मक प्रकार की होती हैं और प्रत्येक व्यक्ति ठीक दूसरे के समान कार्य करता है।......... एक क्षण के लिए व्यक्ति भीड़ की प्रवृत्ति में खो जाता है तथा स्वयं अधिक उच्च आवेश से कार्य करता है।......वे यह नहीं जानते कि वे क्या कर रहे हैं। सनक, झक, मारपीट, आकस्मिक भगदड़, हड़बड़ी तथा आन्दोलन समूह के बजाय भीड़ की अधिक विशेशताएँ हैं।3

यदि हम विश्लेशण करें तो भारत में भीड़ का यही स्वरूप हावी होता जा रहा है और वह हिंसा को साधन बना रहा है। इसे राजनैतिक रूप दे रहा है। भारत की वर्तमान व्यवस्था में इस हिंसा को अपराध से ज्यादा राजनैतिक विरोध के रूप में स्वीकार कर लिया गया है।

विद्वानों द्वारा राजनैतिक हिंसा के चार सिद्धान्तों पर विचार किया गया हैः– (1) कुंठित–आक्रमण भाव ग्रन्थि – (Frustation Aggression Complex) (2) सापेक्ष उन्नतीकरण का सिद्धान्त – (Relative Deprivation Theory) (3) आधुनिकीकरण – (Modernization) (4) संघर्श–एक सामाजिक परिवर्तन की सतत् प्रक्रिया – (Conflict-inherent process of social change).

संघर्श और हिंसा का प्रथम सिद्धान्त यह मानकर चलता है कि विकसित तथा औद्योगिक रूप से सम्पन्न व्यक्तियों के जीवन में शहरीकरण और संचार माध्यम उन्हें और उच्च स्तरीय जीवन जीने के लिये सहयोग करते हैं, जबकि साधनहीन तथा अविकसित व्यक्ति इस विकास के साथ खुद को स्थापित नहीं कर पाता, यह उसमें बड़ी कुंठा को जन्म देते हैं, जो कालानतर में हिंसा का रूप ले लेता है।

किसी भी समाज में विकास की धारा समान नहीं होती है। एक वर्ग या समूह कई बार दूसरे से ज्यादा साधन सुविधाओं का उपभोग करता है। यह सम्पन्नता दूसरे वर्ग में तुलनात्मक रूप से अभाव की स्थिति में रोश और हिंसा को जन्म देती है।

आधुनिकता, राजनैतिक हिंसा का एक महत्वपूर्ण कारक है। सामान्य तौर पर आधुनिकीकरण में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक संस्थाओं, व्यवस्थाओं और परम्पराओं को परिवर्तित किया जाना अपरिहार्य होता है। इस परिवर्तन में यदि नये उभरते वर्ग और समूहों को समुचित प्रतिनिधित्व, व स्थान नहीं दिया जाता तो यह भी हिंसा का कारण बन जाती है। फ्रेंक फेनर, जार्ज सोरैल, लुईस कोझर, रोल्फ डेरेफ आदि बहुत से विचारक हिंसा को कार्लमार्क्स की तरह परिवर्तन की अनिवार्य प्रक्रिया मानते हैं। उनका मानना है कि कुछ समूह दूसरे की तुलना में अधिक सुविधा सम्पन्न होते हैं, इसलिये परिवर्तन के लिये हिंसा को माध्यम बनाना पड़ता है। सोरैल का मानना है कि हिंसा द्वारा एक वर्ग विशेश स्वयं को खोजता तथा स्थापित करता है। फेनर ने इस व्यवस्था को अपनी किताब जीम ॅतमबीमक व जीम म्तजी में उपनिवेशवादी सत्ता से स्वयं को स्वतन्त्र करने के लिये प्रयुक्त किया है।

भारत में होने वाली हिंसा को उसकी तीव्रता, आकृति और अवधि के आधार पर बांटा जा सकता है :–

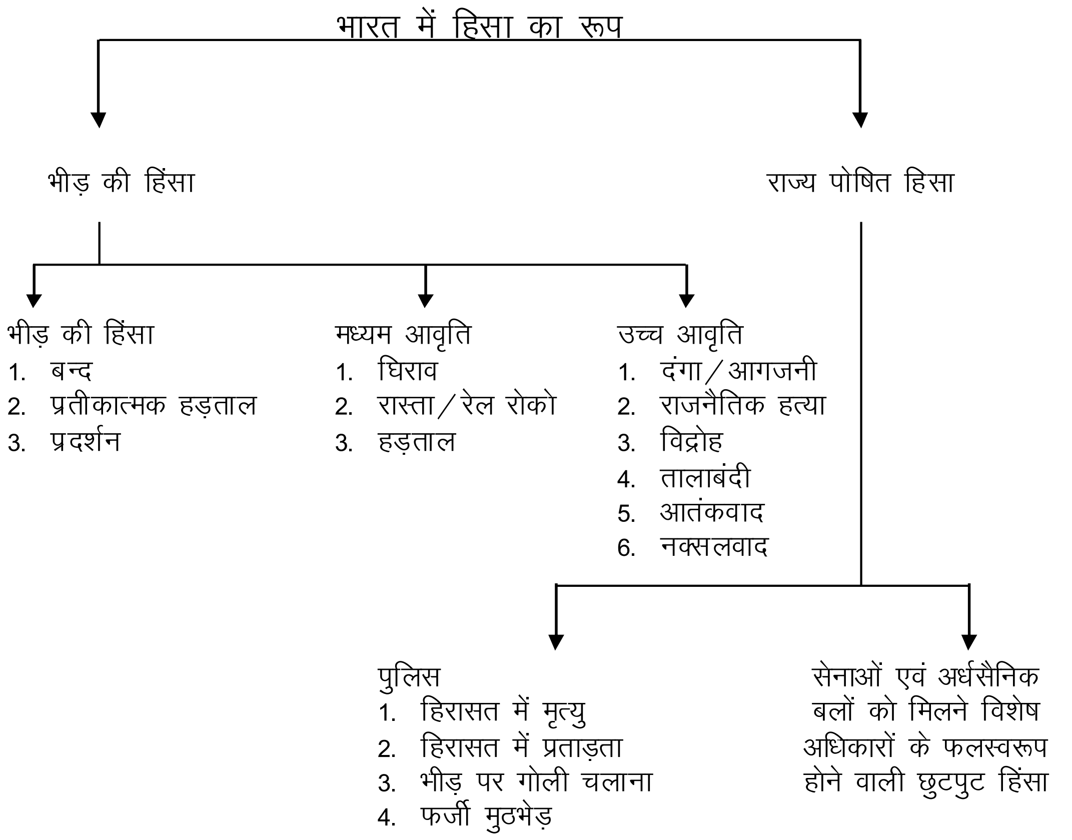
भारत में हिंसा का रूप
भीड़ की हिंसा
राज्य पोषित हिंसा
भीड़ की हिंसा
1. बन्द
2. प्रतीकात्मक हड़ताल
3. प्रदर्शन
मध्यम आवृति
1. घिराव
2. रास्ता/रेल रोको
3. हड़ताल
उच्च आवृति
1. दंगा/आगजनी
2. राजनैतिक हत्या
3. विद्रोह
4. तालाबंदी
5. आतंकवाद
6. नक्सलवाद
पुलिस
1. हिरासत में मृत्यु
2. हिरासत में प्रताड़ता
3. भीड़ पर गोली चलाना
4. फर्जी मुठभेड़
सेनाओं एवं अर्धसैनिक बलों को मिलने विशेष अधिकारों के फलस्वरूप होने वाली छुटपुट हिंसा

भारत में वर्तमान में होने वाली राजनैतिक हिंसा जिसे हम आन्दोलन नहीं कह सकते, तथा जो विरले ही राजनैतिक संगठनात्मक परिवर्तन की सोच लिये होता है। यह सामान्यतया कुशासन तथा प्रशासन के प्रति विरोध के रूप में उभरता है।

संगठित संघर्श के रूप में भारतीय सामाजिक व्यवस्था में बहुत से कारक प्रभावी रहे, जिनमें जाति, धर्म, भाशा, कुछ वर्ग विशेश की समस्यायें, राजनीति का अपराधीकरण या अपराधी का राजनीतिकरण जैसे अनेक सामाजिक संघर्श के कारण, भारतीय व्यवस्था में, स्वतन्त्रता उपरान्त देखने को मिलते रहे हैं। इनका परिणाम यदा–कदा राजनैतिक हिंसा के रूप में देखने को मिलता रहा है। ये राजनैतिक संघर्श या विरोध बाद के समय में बड़े दबावकारी समूह के रूप में उभरे तथा क्षेत्रीयता, भाशावाद, सम्प्रदायवाद के नाम पर शासकीय सुविधाओं की मांग करते हैं तथा बाद के वर्शों में दवाब से नीतिगत परिवर्तन का प्रयास भी करते हैं। चुनाव के बीच इस सबका बोलबाला उच्चतम स्तर तक पहुँच जाता है तथा इन सभी ने भारतीय शासन में एक बहुसंस्कृतीय व्यवस्था को विकसित किया है।

पाल ब्रास द्वारा किया गया शोध बताता है कि कोई भी साम्प्रदायिक तनाव राजनीति सरकार और पुलिस की शह के बिना भयावह दंगे का रूप धारण नहीं कर सकता। इसका मतलब है कि लोगों के मन में भले ही एक दूसरे के प्रति गुस्सा नफरत और हिंसा भरी हो, लेकिन व्यापक पैमाने पर उत्तेजित भीड़ द्वारा हिंसा का तांडव, बेहतर संगठन लाभ बंदी, अधिकारियों की मिली भगत और कानून व्यवस्था के लिये जबाबदेह लोगों द्वारा कानून तोड़ने वालो ंको अपने हिसाब से काम करने का समय और गुजाइंश देने पर ही सम्भव है।[4]

यह शोध विरोध, तथा हिंसा के सभी पक्षों पर लागू किया जा सकता है।

उल्लेखनीय है कि भारतीय समाज में अब जाति, धर्म, क्षेत्र पर आधारित संघर्श पिछले दशकों से कम हुये हैं (ये बात अलग है कि आतंकवाद, नक्सलवाद जैसी समस्यायें बढ़ी हैं, जो सामाजिक संघर्श नहीं है) तथा सामाजिक समरसता बढ़ी है, किन्तु भीड़ की उग्रता ने विकराल रूप लिया है। भीड़ एकाएक किसी घटना विशेश के विरोध में बुलबुले की तरह विरोध, संघर्श और हिंसा का स्वरूप ले लेती है। जो सत्ता की वैधता को चुनौती देने से ज्यादा उसकी विश्वसनीयता को चुनौती देती है। सामान्य तौर पर भीड़ नीतिगत तथा प्रशासनिक व्यवस्था से असन्तुश्ट होकर विरोध करती है।

नैतिक, सामाजिक और राश्ट्रीय चरित्र की कमी इस भीड़ की उग्रता का एक बड़ा कारण है। आज समाज में नैतिकता एक पिछड़ापन और मूर्खता का पर्याय है। उपभोक्तावादी संस्कृति में गंजे को कंघा बेचना, कला और योग्यता को परिभाशा है। आज के युग में 70 वर्श के बुजुर्ग को पुनः दाँत उगा देने की गारंटी वाला दंत मंजन बेचना सामान्य बात है। इस व्यवस्था में राश्ट्रीयता, राश्ट्रीय नैतिकता, व्यक्तिगत दायित्व और सामाजिक सरोकार खोखले शब्द हैं। इस भीड़ से संवेदनशील तथा विवेकपूर्ण होने के सोच की अपेक्षा करना नादानी ही है। यह भीड़ शौकिया तोड़फोड़ और खोखले अहंकार के कारण किसी भी हद तक चली जाती है। सामान्य तौर पर किसी भीड़ के व्यवहार में विशयवस्तु के प्रति गम्भीरता, जागरूकता व वास्तविक चिन्ता कम ही देखने को मिलती है।

इस भीड़ की उग्रता का दूसरा बड़ा कारण सामाजिक व राजनैतिक आदर्शों की कमी है। गांधीजी और अन्ना जैसे आदर्श नेट, लैबटॉप, मोबाइल से जुड़ी पीढ़ी को देखने को नहीं मिल पा रहे हैं जिसे विदेशी चिन्तनहीनता की संस्कृति खींच रही है। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि लगभग सभी क्षेत्रों में सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक व मानवीय रिश्ते शर्मसार हुये हैं। आपसी विश्वास टूटा है और सभी आदर्श खण्डित

हुये हैं। नयी पीढ़ी इस सबके बीच 'नैतिकता' को खोखला मान रही है, ऐसे में सामाजिक, राजनैतिक आदर्श इस समय की कठोर आवश्यकता हैं।

यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि आज के युवा वर्ग का असहिश्णुता, सृजनात्मक न होकर हिंसात्मक तथा विध्वंसकारी हो गयी है। कई महानतम कला, संगीत, कविता, फिल्में असहिश्णुता का परिणाम रही हैं।2 आज के युवा सृजनात्मक अभिव्यक्ति के प्रति उदासीन हैं। अवसरों की कमी, सामाजिक स्वीकारोक्ति का अभाव, रोजगारपरक शिक्षा का दबदबा, परम्परागत मान्यताएँ कलात्मक अभिव्यक्ति को दबा कर रख देती हैं। परिणामस्वरूप हमारी ऊर्जा सकारात्मक न होकर रोश और हिंसा के रूप में अभिव्यक्त होती है। उपभोक्तावादी जीवन में भौतिक प्रदर्शन के बिना कलायें महत्वहीन हो गयी हैं। रोजगार की कमी इस असहिश्णुता को बढ़ा रही है। एक शून्य का निर्माण हो रहा है, जिसका उपयोग राजनीतिक दल या राजनैतिक तत्व भीड़ को उग्रता प्रदान करने के लिये करते हैं। धीरे–धीरे ये इस उग्रता को सामाजिक मान्यता प्रदान करवा लेते हैं। भीड़ गुस्से का स्त्रोत न रह कर साधन बन जाती है और किसी भी अराजक स्थिति के लिये स्वतन्त्रता शब्द का लबादा पहनकर हिंसक और आतंकी बन जाती है।

समाज तथा प्रशासन में बढ़ी पारदर्शिता तथा उत्तरदायित्व की मांग भी इस विरोध का आधार बनता है। तकनीकी क्रांति, मीडिया की सक्रियता, सूचना के अधिकार जैसे कानूनों ने प्रशासन द्वारा गोपनीयता के नाम पर किये जाने वाले काले कारनामों पर चोट की है। इन जानकारियों के प्रकाश में आ जाने से प्रत्येक घटना प्रशासन के 'कुछ न करने' के भाव को ही स्थापित करता है तथा यह एक नये विद्रोह और हिंसा को जन्म देता है।

65 वर्शों के स्वतन्त्र भारत में प्रशासनिक व्यवस्था और ढांचा मजबूत और स्वच्छ होने की बजाय चरमावस्था तक भ्रश्ट, अनीतिगत, अति व्यवहारिक (नियमों को ताक में रखना) अकुशल, असंवेदनशील, अनैतिक और लम्पट हो चुकी है। साधनों की कमी, राजनैतिक हस्तक्षेप, मानव संसाधनों का अभाव, कार्य की अधिकता आदि ऐसे अनेक आधार बनाकर पुलिस प्रशासन राहुल राय, लखनऊ का पानवाला, गुजरात में आई.ए.एस. अधिकारी, नोयडा में आरुशी के पिता जैसे ऐसे अनेक उदाहरण, प्रशासन और व्यवस्था के प्रति स्थापित अविश्वास को और मजबूत करने के लिये पर्याप्त हैं। वरिश्ठ जड़ें जमा हो चुकी इस प्रशासनिक और राजनैतिक व्यवस्था में लोक सभा में प्रश्न पूछने के लिये रिश्वत लेना, कबूतरबाजी में शामिल होना, अनेकानेक आपराधिक मामलों में संगीन जुर्म, यहाँ तक कि फांसी की सजा का निर्णय सुनना, हत्या, बलात्कार, घोर भ्रश्टाचार, लाखों करोड़ों के गबन, शासकीय सम्पत्ति का दुरुपयोग कामनवेल्थ घोटाला, राज्यों में जमीन का घोटाला, विधानसभा में ब्लू फिल्म देखने वाले–राजनैतिक चरित्र हमारी भीड़ और आमजन के निर्माता है। राजनीति के नाम पर धर्म, जाति, सम्प्रदाय, क्षेत्र, वर्ग, और समान अधिकार–सुविधाओं के नाम पर मानवता को ताक में रख कर जनता की भावनायें भड़काना इनका चरित्र बन चुका है। इनके प्रत्येक वाक्य में जनता मुखौटा देखती है तथा मुखौटे की नाटकीयता पर अविश्वास रखते हुये एक सच्चे नेता और सच्चे हमदर्द को ढूँढती है।

लोकतान्त्रिक भारत में सरकार के तीनों अंगों की जड़ें अति खोखली और पंगु हो चुकी हैं। जहाँ व्यवस्थापिका में कतिपय अनैतिक चरित्रों ने प्रवेश किया है वहीं कार्यपालिका लालफीताशाही, भ्रश्टाचार और असंवेदनशीलता का पर्याय बन चुकी है। सबूतों की पेचीदिगी ने न्यायापालिका के कार्य को कुछ सीमा तक प्रभावित किया है। रही सही कसर न्यायपालिका ने पूरी कर दी है। दैनिक भास्कर के 14.12.2008 के एक समाचार के अनुसार, ''दो फरवरी 1985 को दोपहर 12.00 बजे ग्वालियर पुलिस थाने को सूचना मिली कि शर्मा फार्म हाउस के पास झाड़ियों में चार–पाँच बदमाश डकैती की योजना बनाकर छिपे हुये हैं। इस सूचना पर पुलिस ने दविश देकर आरोपियों को पकड़ा उनके खिलाफ मुकद्दमा कायम कर अभियोग पत्र न्यायालय में पेश किया गया। साक्ष्य के अभाव में अदालत ने 23 वर्श बाद डकैती की तैयारी कर रहे आरोपीगणों को बरी कर दिया है।''

न्यायपालिका का यह एक उदाहरण मात्र है – लाखों करोड़ों मुकद्दमों के बोझ से दबी न्यायव्यवस्था में ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जिनमें न्याय सुनने के लिये प्रार्थी का नाती–पोता बचता है या आरोपी आरोप से कई गुना सजा भोग चुका होता है।

भ्रश्टाचार के आंकड़े बताते हैं कि भारतीय शासन तथा प्रशासन की जड़ें पर्याप्त खोखली हो चुकी हैं। विश्व स्तर पर भी इन मानकों में भारत ने अच्छा स्थान प्राप्त किया है। हाल ही में पाँच राज्यों के चुनावों में 690 प्रत्याशी दागी थे, जिनमें से 252 जीतकर आये हैं। सबसे ज्यादा दागी उत्तर प्रदेश में हैं। मध्यप्रदेश के निगम का चपरासी करोड़ों का तथा खनन माफिया को रोकने के प्रयास में आई..पी.एस. नरेन्द्र कुमार की हत्या हो जाती है। इस तरह की घटनाओं ने शासन और प्रशासन के प्रति चरम सीमा तक अविश्वास और क्रोध को हिंसा में परिणित किया है। राज्य पोशित हिंसा संरचनात्मक विघटन का एक बहुत बड़ा कारण है। पुलिस कस्टडी में मृत्यु, जबरन मुठभेड़, पुलिस फायरिंग, झूठे मुकद्दमें, सही समय पर कार्यवाही न करना, अतिवादी शाक्ति का प्रयोग करना जैसे अनेक कारण हिंसा को भड़काते हैं। कुछ क्षेत्रों में सशस्त्र सेनाओं को मिले विशेश अधिकारों का दुरुपयोग भी इस विद्रोह में सहयोग करता है।

भ्रश्टाचार संवेदनहीनता, राज्य पोशित शक्ति का अतातायी रूप इस हिंसा का मूल कारण है, लेकिन स्वार्थपोशित अराजक तत्वों पर काबू पाया जाना आवश्यक है। विरोध के नये, उपयुक्त, सर्वस्वीकृत, वैधानिक तरीके स्थापित किये जाने आवश्यक हैं। भारत बहुसंस्कृतीय देश है। अनेकता में एकता इसकी जीवन शैली है। प्रत्येक को अपनी संस्कृति का रक्षा का संवैधानिक अधिकार है किन्तु सभी संस्कृतियों का उपयुक्त भाग और अधिकार की सीमा परिभाशित की जानी आवश्यक है। समुदायवादी जीवन में स्वतन्त्रता तथा स्वच्छन्दता के भेद को स्पश्ट परिभाशित किये जाने की आवश्यकता है। जाट बिरादरी का रेल तथा सड़क मार्गों पर बैठकर आरक्षण की मांग करना किसी प्रकार से विरोध के उपयुक्त तरीकों का प्रकार नहीं है। यह हिंसात्मक हो जाये तो और ज्यादा आलोच है।

जहाँ विरोध के तरीके बदलने की आवश्यकता है, वहीं मांगों और समस्याओं के प्रभावी और सक्षम निपटारे हेतु सक्रिय शासकीय तन्त्र की आवश्यकता भी है। 'सरकार बिना तोड़फोड़ और विध्वंस के बात सुनती ही नहीं है'' इस सामान्य विश्वास को बदले जाने की आवश्यकता है। शासकीय बहरेपन को बदलना होगा। लोकपाल के लिए अन्ना का आन्दोलन शान्तिपूर्ण विरोध तथा गांधीवादी मार्ग का सशक्त उदाहरण बनकर उभरा है, लेकिन फिर भी येन–केन कारणों से अभी तक सशक्त लोकपाल का न बन पाना शान्तिपूर्ण मार्ग को असफल सिद्ध कर रहा है। इसके कारण आक्रोश में आंदोलनकारी वर्ग अपना मार्ग बदलने पर विचार करने लगता है। धर्म, जाति, लिंग, वंश, शिक्षा, उम्र की सीमाएँ तोड़कर सकारात्मक ऊर्जा का यह प्रवाह कब नकारात्मक हो जाये, नहीं कहा जा सकता। कहीं ऐसा न हो कि समय रहते न चेतने की स्थिति में भीड़ का आक्रोश धीरे–धीरे संरचनात्मक विघटन की ओर उन्मुख होने लगे। इस संरचनात्मक विघटन को बचाने के लिए व्यवस्थाओं को साफ सुथरा और सक्षम बनाना आज समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

सन्दर्भ

1.नंदी प्रीतिश, असहिश्णुता को साधने की कला, दैनिक भास्कर, 5 नवम्बर 2008।

2.राय सुब्रतो, मोब वाइलेन्स एन्ड साइकोलोजी, इन्डिपेन्डन्ट इन्डियन : वर्क एन्ड लाइफ आफ सुब्रतो राय दिसम्बर 10 2006, पृ. 16–22

3.किंग्सले डेविस, मानवसमाज, पृ. 303 ।

4.कौशिक सुशीला तथा त्रिपाठी स्वर्ण, भारतीय शासन एवं राजनीति, हिन्दी माध्यम कार्यालय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1984।

5.राव एम.एस.ए.–भारत में सामाजिक आन्दोलन, नई दिल्ली, मनोहर, 1978, पृ. 2